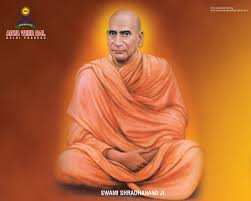
**ओ३म्**

**‘ईश्वर की कृपा व वेदाध्ययन से ही नास्तिकता की समाप्ति सम्भव’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

 ‘**खुदा के बन्दो को देखकर खुदा से मुनकिर हुई है दुनिया, कि जिसके ऐसे बन्दे हैं वो कोई अच्छा खुदा नहीं।।‘** आजकल संसार में सभी मतों के शिक्षित व धनिक मनुष्यों का आचरण प्रायः श्रेष्ठ मानवीय गुणों के विपरीत पाया जाता है जो मनुष्यों को नास्तिक बनाने में सहायक होता। इसका एक कारण ऐसे लोगों में वेदों का ज्ञान न होना भी है। वेदों का अध्येता वा ज्ञानी मनुष्य कभी नास्तिक नहीं हो सकता, ऐसा वेदों का कुछ अध्ययन करने पर हमारा विश्वास है। वेदों में जो भी मान्यतायें व सिद्धान्त हैं वह सब युक्ति, तर्क व सृष्टिक्रम के अनुकूल हैं। ईश्वर का स्वरूप व उसके कार्य भी युक्ति, तर्क व बुद्धि संगत हैं। वेदों के ज्ञान से दूर नास्तिक मनुष्य को ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास करने वाला ईश्वर-विश्वासी कैसे बनाया जाये? क्या नास्तिक व्यक्ति के सभी प्रश्नों व शंकाओं का उत्तर देने से वह व्यक्ति आस्तिक बन सकता है? प्रायः ऐसा नहीं होता। सभी शंकाओं का उत्तर दे देने पर भी जिन कारणों से वह नास्तिक बना होता है, वह उसके सम्मुख होते हैं जिससे वह ईश्वर के अस्तित्व को मानने को तैयार नहीं होता। **उसकी आत्मा, मन व बुद्धि में ईश्वर के अस्तित्व व उसके गुण-कर्म-स्वभाव का विश्वास दिलाना कठिन कार्य होता है।** इससे सम्बन्धित एक बहुत ही प्रेरक उदाहरण हमें भारत में गुरूकुल पद्धति के पुररूद्धारक व स्वतन्त्रता संगाम के अपने समय के प्रथम पंक्ति के नेता स्वामी श्रद्धानन्द के जीवन में मिलता है जिसका वर्णन उन्होंने स्वयं अपनी लेखनी से अपनी आत्मा कथा **‘कल्याण मार्ग के पथिक’** में किया है।

स्वामी श्रद्धानन्द अपनी युवावस्था में नास्तिक बन गये थे, वह लिखते हैं कि 14 श्रावण संवत् 1936 (अगस्त, 1880) के दिन स्वामी दयानन्द बांसबरेली पधारे। 3 भाद्रपद को चले गये। स्वामी जी महाराज के पहुंचते ही कोतवाल साहब (स्वामी श्रद्धानन्द के पिता श्री नानक चन्द जी) को हुकुम मिला कि पण्डित दयानन्द सरस्वती के व्याख्यानों के अन्दर फिसाद को रोकने का बन्दोबस्त कर दें। **पिता जी स्वयं सभा में गये और स्वामी जी महाराज के व्याख्यानों से ऐसे प्रभावित हुए (कोतवाल साहिब कट्टर पौराणिक थे और वैदिक सिद्धान्तों को न जानते थे और न मानते थे) कि उनके सत्संग से मुझ नास्तिक की संशयनिवृति का उन्हें विश्वास हो गया। रात को घर आते ही मुझे कहा-‘‘बेटा मुंशीराम (स्वामी श्रद्धानन्द जी का युवावस्था का नाम) ! एक दण्डी संन्यासी आये हैं, बड़े विद्वान् और योगिराज हैं। उनकी वक्तृता सुनकर तुम्हारे संशय दूर हो जाएंगे। कल मेरे साथ चलना।” उत्तर में कह तो दिया कि चलूँगा परन्तु मन में वही भाव रहा कि केवल संस्कृत जाननेवाला साधु बुद्धि की बात क्या करेगा?** दूसरे दिन बेगम बाग की कोठी में पिताजी के साथ पहुंचा जहां व्याख्यान हो रहा था। **उस दिव्य आदित्यमूर्ति को देख कुछ श्रद्धा उत्पन्न हुई, परन्तु जब पादरी टी.जे. स्काट और दो-तीन अन्य युरोपियनों को उत्सुकता से बैठे देखा तो श्रद्धा और भी बढ़ी। अभी दस मिनट वक्तृता नहीं सुनी थी कि मन में विचार किया-‘यह विचित्र व्यक्ति है कि केवल संस्कृतज्ञ होते हुए युक्तियुक्त बातें करता है कि विद्वान दंग हो जाए।’ व्याख्यान परमात्मा के निज नाम ओ३म् पर था। वह पहले दिन का आत्मिक आह्लाद कभी भूल नहीं सकता। नास्तिक रहते हुए भी आत्मिक आह्लाद में निमग्न कर देना ऋषि-आत्मा का ही काम था।** उसी दिन दण्डी स्वामी से निवेदन किया गया कि टाउनहाल मिल गया है। इसलिए कल से व्याख्यान वहां शुरू होंगे। स्वामी जी ने उच्च स्वर से कह दिया कि सवारी (बग्घी वा घोड़ा गाड़ी) समय पर पहुंच जाया करेगी तो वह तैयार मिलेंगे।

टाउन हाल में जब तक ‘नमस्ते, पोप, पुराणी, जैनी, किरानी, कुरानी’ इत्यादिक परिभाषाओं का अर्थ बतलाते रहे तब तक तो पिता जी श्रद्धा से सुनते रहे, परन्तु जब मूर्तिपूजा और ईश्वरावतार का खण्डन होने लगा तो जहाँ एक ओर मेरी श्रद्धा बढ़ने लगी वहां पिता जी ने तो आना बन्द कर दिया और एक अपने मातहत थानेदार की ड्यूटी लगा दी। 24 अगस्त की शाम तक मेरा समय-विभाग यह रहा कि दिन का भोजन करके दोपहर को बेगम बाग की कोठी पहुंच ड्योढ़ी पर बैठ जाता। ढाई से चार बजे के बीच में जब ऋषि का दरबार लगता तो आज्ञा होते ही जो पहला मनुष्य आचार्य ऋषि को प्रणाम करता वह मैं था। प्रश्नोत्तर होते रहते और मैं उनका आनन्द लेता रहता। व्याख्यान के बाद बीस मिनट तक सब दरबारी विदा हो जाते और आचार्य चलने की तैयारी कर लेते। मैं अपनी वेगनट पर सीधा टाउनहाल पहुंचता। व्याख्यान का आनन्द उठाकर उस समय तक घर न लौटता जब तक कि आचार्य दयानन्द की बग्धी उनके डेरे की ओर न चल देती। 25, 26, 27 अगस्त को ऋषि दयानन्द के पादरी स्काट के साथ तीन शास्त्रार्थ हुए। विषय प्रथम दिवस पुनर्जन्म, द्वितीय दिन ईश्वरावतार और तीसरे दिन यह था कि मनुष्य के पाप बिना फल भुगते क्षमा किये जाते हैं या नहीं। पहले दो दिन लेखकों में मैं भी था। परन्तु दूसरी रात को मुझे सन्निपात ज्वर हो गया और फिर आचार्य दयानन्द के दर्शन मैं न कर सका। 30 श्रावण से 9 भाद्रपद (15 से 25 अगस्त) तक ऋषि जीवन-सम्बन्धी अनेक घटनाएं मैंने देखी जिनमें से उन्हीं कुछ-एक को यहां लिखूंगा जिनका प्रभाव मुझ पर ऐसा पड़ा कि अब तक मेरी आंखों के सामने घूम रही है। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने स्वामी दयानन्द जी के बरेली में उपदेशों की अपनी आत्मकथा में विस्तार से चर्चा की है जो पढ़ने योग्य है। हम अन्य अप्रासंगिक किन्तु अति महत्वपूर्ण चर्चा को छोड़कर अपने मुख्य विषय पर आते हैं जो स्वामी दयानन्द से उनका नास्तिकता के विषय में संवाद था। स्वामी श्रद्धानन्द जी लिखते हैं-एक अन्तिम घटना के साथ इस अपूर्व सत्संग की कथा समाप्त करता हूं। यद्यपि आचार्य दयानन्द के उपदेशों ने मुझे मोहित कर लिया था, तथापि मैं मन में सोचा करता था कि यदि ईश्वर और वेद के ढकोसले को पण्डित दयानन्द स्वामी तिलांजलि दे दें तो फिर कोई भी विद्वान् उनकी अपूर्व युक्तियों और तर्कना-शक्ति का सामना करनेवाला न रहे। **मुझे अपने नास्तिकपन का उन दिनों अभिमान था।** एक दिन ईश्वर के अस्तित्व पर आक्षेप कर डाले। पांच मिनट के प्रश्नोत्तर में ऐसा घिर गया कि जिह्वा पर मुहर लग गयी। मैंने कहा-**“महाराज ! आपकी तर्कना शक्ति बड़ी तीक्ष्ण है। आपने मुझे चुप तो करा दिया, परन्तु यह विश्वास नहीं दिलाया कि परमेश्वर की कोई हस्ती (अस्तित्व) है।”** दूसरी बार फिर तैयारी करके गया, परन्तु परिणाम पूर्ववत् ही निकला। तीसरी बार फिर पूरी तैयारी करके गया परन्तु मेरे तर्क को फिर पछाड़ मिली। मैंने फिर अन्तिम उत्तर वही दिया-**“महाराज ! आपकी तर्कना-शक्ति बड़ी प्रबल है। आपने मुझे चुप तो करा दिया, परन्तु यह विश्वास नहीं दिलाया कि परमेश्वर की कोई हस्ती है?’’** महाराज पहले हंसे, फिर गम्भीर स्वर से कहा **‘‘देखो, तुमने प्रश्न किये, मैंने उत्तर दिये-यह युक्ति की बात थी। मैंने कब प्रतिज्ञा की थी कि मैं तुम्हारा विश्वास परमेश्वर पर करा दूंगा? तुम्हारा परमेश्वर पर विश्वास उस समय होगा जब वह प्रभु स्वयं तुम्हें विश्वासी बना देंगे।”** अब स्मरण आता है कि नीचे लिखा उपनिषद्वाक्य उन्होंने पढ़ा था--**‘नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रेतेन। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम्।।’** (कठोपनिषद 1/2/23)

स्वामी श्रद्धानन्द लिखित आत्मकथा **‘कल्याण मार्ग का पथिक’** सभी के लिये पढ़ने योग्य एक अत्युत्तम ग्रन्थ है। गांधी जी ने भी इसे पढ़ा था। वह स्वामी श्रद्धानन्द जी को अपना बड़ा भाई कहते थे। स्वामी श्रद्धानन्द जी ने इस कथ्य में अपने जीवन की एक अत्यन्त निजी घटना भी दी हैं, जिसका उल्लेख शायद कोई मनुष्य नहीं कर सकता। इसके पढ़ने के बाद गांधी जी ने भी अपने जीवन की उससे मिलती जुलती घटना अपनी आत्मा कथा में वर्णित की थी। स्वामी श्रद्धानन्द जी की आत्मकथा की भूमिका से कुछ अत्यन्त महत्वूपर्ण शब्दों को पाठको के अवलोकनार्थ प्रस्तुत कर रहे हैं-**‘ऋषिवर ! तुम्हें भौतिक शरीर त्यागे 41 वर्ष हो चुके, परन्तु तुम्हारी दिव्य मूर्ति मेरे हृदय-पट पर अब तक ज्यों-की-त्यों अंकित है। मेरे निर्बल हृदय के अतिरिक्त कौन मरणधर्मा मनुष्य जान सकता है कि कितनी बार गिरते-गिरते तुम्हारे स्मरणमात्र ने मेरी आत्मिक रक्षा की है। तुमने कितनी गिरी हुई आत्माओं की काया पलट दी, इसकी गणना कौन मनुष्य कर सकता है? परमात्मा के बिना, जिनकी पवित्र गोद में तुम इस समय विचर रहे हो, कौन कह सकता है कि तुम्हारे उपदेशों से निकली हुई अग्नि ने संसार में प्रचलित कितने पापों को दग्ध कर दिया है? परन्तु अपने विषय में मैं कह सकता हूं कि तुम्हारे सत्संग ने मुझे कैसी गिरी हुई अवस्था से उठाकर सच्चा जीवन-लाभ करने के योग्य बनाया?’’**

हमें लगता है कि संसार में अनेक प्रकार के नास्तिक हैं। कुछ नास्तिक तो ऐसे हैं जो यह कहते हैं कि हम ईश्वर के अस्तित्व को नहीं मानते। हमारे सभी कम्युनिस्ट भाई और संसार के अनेक वैज्ञानिक इस श्रेणी में लिये जा सकते हैं। दूसरे नास्तिक हम उन लोगों को भी मानते हैं जो धर्म-कर्म तो खूब करते हैं, अपने मत, पन्थ व सम्प्रदाय की धर्म-पुस्तकों को पूरी श्रद्धा पूर्वक पढ़कर उन पर आचरण करते हैं परन्तु ईश्वर के सत्य स्वरूप को न जानने और उसकी सत्य पद्धति वैदिक योग विधि से उपासना न करने के कारण वह भी अर्ध नास्तिक ही कहे जायेंगे। उनकी भ्रान्तियां महर्षि दयानन्द के ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश आदि व वेद के स्वाध्याय से ही दूर हो सकती है जिनकी प्रेरणा इन अर्द्धनास्तिकों के धर्म गुरू आदि नहीं करते अपितु उन्हें सत्य से विमुख रखने का प्रयास करते हैं। अतः सत्यार्थ प्रकाश व वैदिक साहित्य को पढ़े बिना उन सभी की नास्तिकता समाप्त होना असम्भव प्रतीत होता है। हमें लगता है कि **यदि वह सत्यार्थ प्रकाश व वेदादि साहित्य का अध्ययन करें तब ही ईश्वर की कृपा होने अथवा ईश्वर के कृपाकटाक्ष होने पर ही वह सच्चे आस्तिक व सच्चे ईश्वर विश्वासी बन सकते हैं जिस प्रकार स्वामी श्रद्धानन्द के जीवन में हुआ।** यह बात हम निष्पक्ष रूप से अपने ज्ञान व अनुभव के आधार पर कह रहे हैं। महर्षि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश में स्तुति प्रार्थना और उपासना का विस्तार से उल्लेख किया है और उपासना की विधि और उसका फल क्या होता है, यह भी बताया है। एतदविषयक उनके विचार पाठको के लाभार्थ प्रस्तुत हैं। वह लिखते हैं कि जब उपासना करना चाहें, तब एकान्त शुद्ध देश में जाकर, आसन लगा प्राणायाम कर बाह्य विषयों से इन्द्रियों को रोक, मन को नाभिप्रदेश में, वा हृदय, कण्ठ, नेत्र, शिखा अथवा पीठ के मध्य हाड़ में किसी स्थान पर स्थिर कर अपने आत्मा और परमात्मा का विवेचन करके परमात्मा में मग्न होकर संयमी होवे। **जब इन साधनों को करता है, तब उसका आत्मा और अन्तःकरण पवित्र होकर सत्य से पूर्ण हो जाता है। नित्य प्रति ज्ञान-विज्ञान बढ़ा कर मुक्ति तक पहुंच जाता है। जो आठ प्रहर में एक घड़ी भर भी इस प्रकार ध्यान करता है वह सदा उन्नति को प्राप्त हो जाता है।** उपासना का फल बताते हुए वह कहते हैं कि जैसे शीत से आतुर पुरुष का अग्नि के पास जाने से शीत निवृत्त हो जाता है, वैसे परमेश्वर के समीप प्राप्त होने से सब दोष-दुःख छूटकर परमेश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण-कर्म-स्वभाव पवित्र हो जाते हैं। इसलिये परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना अवश्य करनी चाहिये। **उपासना से आत्मा का बल इतना बढ़ेगा कि वह पर्वत के समान दुःख प्राप्त होने पर भी न घबरावेगा, और सब को सहन कर सकेगा। क्या यह छोटी बात है? और जो परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना नहीं करता (यह बात नास्तिक, अर्धनास्तिक और सही विधि से उपासना न करने वाले सभी लोगों पर लागू होती है), वह कृतघ्न और महामूर्ख भी होता है क्योंकि जिस परमात्मा ने इस जगत के सब पदार्थ बनाकर जीवों को सुख के लिये दे रक्खे हैं, उसका गुण भूल जाना, ईश्वर ही को न मानना कृतघ्नता और मूर्खता है।**

नास्तिक लोगों का मत होता है कि ईश्वर का अस्तित्व ही नहीं है। इसी कारण से वह वेद और धर्म-कर्म को नहीं मानते। ऐसे लोगों का नास्तिक बनना भी कई बार मत-पन्थों की मिथ्या मान्यतायें व कर्म-काण्ड ही होते हैं। स्वामी श्रद्धानन्द भी मिथ्या मान्यताओं, पाखण्ड से पूर्ण परम्पराओं व धार्मिक कहे जाने वाले लोगों के अनाचार को देखकर ही नास्तिक हुए थे। अतः ईश्वर व उसकी उपासना की विधि को तर्क, युक्ति व बुद्धि की कसौटी पर कस कर ही स्वीकार करना चाहिये। प्रश्न है कि आप ईश्वर-ईश्वर कहते हो, परन्तु उसकी सिद्धि किस प्रकार करते हो? स्वामी दयानन्द-सब प्रत्यक्षादि प्रमाणों से। प्रश्न-ईश्वर में प्रत्यक्षादि प्रमाण कभी नहीं घट सकते? स्वामीजी-**‘इन्द्रियार्थसन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यदेश्यमव्यभिचारि व्यवसायात्मकं प्रत्यक्षम्’** (न्यायदर्शन)। जो श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, ध्राण और मन का, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध, सुख-दुःख सत्यासत्य विषयों के साथ सम्बन्ध होने से ज्ञान उत्पन्न होता है, उसको **“प्रत्यक्ष”** कहते हैं, परन्तु वह निर्भ्रम हो। अब विचारना चाहिये कि इन्द्रियों और मन से गुणों का प्रत्यक्ष होता है गुणी का नहीं। जैसे चारों त्वचा आदि इन्द्रियों से स्पर्श रूप, रस और गन्ध का ज्ञान होने से गुणी जो पृथिवी उसका आत्मा-युक्त मन से प्रत्यक्ष किया जाता है, **वैसे इस प्रत्यक्ष सृष्टि में रचनाविशेष आदि (कर्म और) ज्ञानादि गुणों के प्रत्यक्ष होने से परमेश्वर का भी प्रत्यक्ष है।** और जब आत्मा मन और मन इन्द्रियों को किसी विषय में लगाता, वा चोरी आदि बुरी वा परोपकार आदि अच्छी बात के करने का जिस क्षण में आरम्भ करता है, उस समय जीव की इच्छा-ज्ञानादि उसी इच्छित विषय पर झुक जाता है। उसी क्षण में आत्मा के भीतर से बुरे काम करने में भय, शंका और लज्जा, तथा अच्छे कामों के करने में अभय, निःशंकता और आनन्दोत्साह उठता है। वह जीवात्मा की ओर से नहीं, किन्तु परमात्मा की ओर से है व होता है। और जब जीवात्मा शुद्ध होके परमात्मा का विचार करने में तत्पर रहता है, उसको उसी समय दोनों प्रत्यक्ष होते हैं। जब परमेश्वर का प्रत्यक्ष होता है तो अनुमानादि से परमेश्वर के ज्ञान होने में क्या सन्देह है? क्योंकि कार्य को देखके कारण का अनुमान होता है। हम समझते हैं कि जिस व्यक्ति को यह बातें समझ में आ जाती है उसे फिर ईश्वर के अस्तित्व के बारे में कोई शंका नहीं रहती। अतः इन पंक्तियों को बार बार पढ़ कर उसका यथार्थ भाव समझने का प्रयास करना चाहिये।

स्वामी दयानन्द, स्वामी श्रद्धानन्द की भांति सच्चा आस्तिक बनने के लिए ईश्वर की कृपा के साथ वेदादि सदग्रन्थों का स्वाध्याय व अध्ययन आवश्यक है। ईश्वर के प्रति श्रद्धा व विश्वास तभी जाग्रत होते हैं जब ईश्वर की कृपा होती है। इसी के साथ लेखनी को विराम देते हैं।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**